महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय

मानवशास्त्रीय उपविभाग प्रदर्शिका

रायपुर

१९६० ईस्वी : १८८१ शक

चित्रफलक एक

अबूझमाड़ का माड़िया युवक

महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय

मानवशास्त्रीय उपविभाग प्रदर्शिका

बालचन्द्र जैन

एम० ए० साहित्यशास्त्री

सहायक संग्रहाध्यक्ष

रायपुर

१९६० ईस्वी: १८८१ शक

निवेदन

मानवशास्त्र, संसार के सब से अधिक बलवान प्राणी मनुष्य के विकास की विभिन्न श्रेणियों और उसकी विभिन्न दशाओं का अध्ययन करता है।

मानवशास्त्र से ज्ञात होता है कि हम किसी समय क्या थे और आज क्या हैं? वह हमें यह भी बताता है कि हम अपनी आज की अवस्था पर कैसे पहुंचे? कैसे हमारी विभिन्न नस्लों और जातियों का निर्माण हुआ? हमारे रीति रिवाज कैसे बने? यह शास्त्र हमारी भाषा के विकास का भी अध्ययन करता है। मनुष्य के व्यवहार, उसकी सभ्यता, विचारों का आदान-प्रदान और विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय भी इसके अध्ययन के विषय हैं।

मानवशास्त्र के तीन अंग हैं, यथा, (१) भौतिक मानवशास्त्र (२) सामाजिक मानवशास्त्र और (३) सांस्कृतिक मानवशास्त्र। इनमें से प्रथम अंग का कार्य शुद्ध वैज्ञानिक है अर्थात वह शाखा मनुष्य के शरीर के विभिन्न अंगों का नाप करके तथा रक्त का परीक्षण करके उसके जातीय समूहों का पता लगाती है। भौगोलिक आधार पर मनुष्य में आई विशेषताओं का भी भौतिक मानवशास्त्र अध्ययन करता है। सामाजिक मानवशास्त्र मनुष्य के सामाजिक ढांचे का अध्ययन करता है जिसमें धर्म का भी समावेश हो जाता है। किन्तु सांस्कृतिक मानवशास्त्र का क्षेत्र उपरोक्त दोनों अंगों की अपेक्षा अधिक बड़ा है। उसे मनुष्य की आर्थिक, सामाजिक और प्रशासनिक अवस्थाओं को तो देखना हां पड़ता है, साथ ही मनुष्य के व्यवहार, रीति-रिवाज, धर्म, साहित्य और कला का भी उसमें अध्ययन किया जाता है। इस अन्तिम शाखा का क्षेत्र तो अधिक है ही उसकी उपयोगिता उससे भी कहीं अधिक है। क्योंकि उससे हमें विदित होता है कि हमारे सामाजिक दुर्गुणों और हमारे अंध विश्वासों का मूल कहां से प्रारंभ होता है। उसी प्रकार हमारे बीच आयी अच्छाइयों के विकास को भी हम जान लेते हैं। किस प्रकार एक जाति के रीति-रिवाज या आचार विचार परस्पर के मिलने जुलने से दूसरी जाति में आये या किस प्रकार एक विशिष्ट जाति में एक ही प्रकार का रहन सहन रूढ़ बनकर रह गया, यह सब हम सांस्कृतिक मानवशास्त्र के माध्यम से जानते हैं।

मानवशास्त्र के अध्ययन की आज हमें बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि मानव-मानव के बीच का भेद निकालकर दूर फेंक देने के लिये यह शास्त्र शास्त्रीय आधार एवं तर्कसम्मत युक्तियों द्वारा हमें मार्ग दिखाता है। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में बसने वाली जनजातियों में हमारे आदिम विचारों और रीति-रिवाजों की जो निधि सुरक्षित है वह विकास के साथ क्रमशः लुप्त हो रही है। उनके संबंध में जानकारी प्राप्त करना उचित है। इन जनजातियों

को अध्ययन करने की दृष्टि भले ही उनकी संस्कृति संबंधी ज्ञान की हो पर लक्ष्य तो केवल यही होना चाहिये कि दरिद्रता और अशिक्षा के बीच पली इन मानव जातियों की आर्थिक स्थिति का सुधार कर उन्हें सुशिक्षित अथच सुसंस्कृत बनाने के प्रयत्न की दिशा क्या होनी चाहिये।

आशा है रायपुर संग्रहालय की मानवशास्त्रीय दीर्घा और उसकी यह प्रदर्शिका दर्शकों और रुचिशील वाचकों का मनोरंजन करते हुये उनकी ज्ञानवृद्धि में सहायक होगी।

बालचन्द्र जैन
स० संग्रहाध्यक्ष

मार्च १९६०
फाल्गुन १८८१

विषय-सूची

चित्र–सूची

मानवशास्त्रीय उपविभाग प्रदर्शिका

मनुष्य का प्रादुर्भाव

वैज्ञानिकों का मत है कि लगभग दो अरब वर्ष पूर्व हमारी पृथ्वी का सूर्य से विच्छेद हुआ। उस समय और उसके बहुत काल बाद तक पृथ्वी पर जीवन का कोई चिन्ह नहीं था। यदि कोई हलचल थी तो केवल जड़ पदार्थों की। कभी भूकम्प होते थे, कभी ज्वालामुखी के रूप में पृथ्वी की सतह के भीतर का गीला पदार्थ पृथ्वी की कड़ी पपड़ी को फोड़कर ऊपर निकल आता था और वही कभी कभी पृथ्वी को फोड़कर फिर उसमें समा जाता था। इस उथल पुथल से हमारा स्थल भाग बना और उसी के साथ समुद्र, पहाड़ और घाटियों का निर्माण हुआ। कहा जाता है कि इसमें लगभग एक अरब वर्ष लग गये।

जब उपरोक्त उथलपुथल शांत हुई तो एककोशीय जीव पैदा हुये जो संघबद्ध होकर अनेक कोशीय जीवों के रूप में विकसित हुये। इन्हीं जीव समूहों से हमारी वनस्पतियों और संसार के समस्त जीवजन्तुओं का क्रमशः विकास हुआ। लगभग ५० करोड़ वर्ष पुराने पथराये चिह्नों से पता चलता है कि उस समय तक अमेरुदण्डीय जीवों का विकास हो चुका था अर्थात उन जीवों का जिनके रीढ़ की हड्डी नहीं थी। उसके लगभग २० करोड़ वर्ष बाद मेरुदण्ड वाली मछलियां पैदा हुईं। इन मछलियों का समय बीत चुकने पर उभयचर जीव बढ़े। ये उभयचर जीव जो पानी और स्थल दोनों पर रहते थे बहुत समय तक पृथ्वी पर राज्य करते रहे। उनके १० करोड़ वर्ष बाद रेंगने वाले जीव अर्थात सरीसृप अपना साम्राज्य स्थापित कर बैठे और वे भी १० करोड़ वर्ष तक सारे भूमण्डल पर राज्य करते रहे। सरीसृपों से पक्षी निकले और उन्हीं से स्तन प्राणी भी विकसित हुये जिनमें मनुष्य भी सम्मिलित है। मनुष्य स्तनप्राणियों में सबसे अधिक विकसित जीव है। उसे अपने विकास में लगभग ५ करोड़ वर्ष का समय लगा और इस बीच अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु उसे घोर संघर्ष करना पड़ा।

स्तन प्राणियों की जिस शाखा से मनुष्य का विकास हुआ वे बहुत छोटे कद के जीव थे किन्तु भागने और पेड़ों पर चढ़ने में बहुत कुशल थे। इन्हीं जीवों से विकसित होकर लेमूर, बन्दर, वनमानुष और मनुष्य की शाखाएं निकलीं। मनुष्यवाली शाखा के प्राणी ने और विकास किया जिसके कारण उसके चारों पैरों में से अगले दोनों पैर क्रमशः हाथों में बदल गये जिनके सहारे वह पेड़ों की डालियों को पकड़कर उन पर आसानी से चढ़ने उतरने लगा। क्रमशः उसकी दृष्टि और मस्तिष्क का विकास होता गया। इस समय तक वह फल-फूल और

वनस्पतियों से ही अपना पेट भरता था। किन्तु जब हिमयुग आया तो मनुष्य का पेड़ों पर रहकर जी सकना असंभव हो गया। कड़ी शीत से बचने के लिये उसने जो प्रयत्न किया उसके परिणाम स्वरूप वह पेड़ पर से उतर कर अपने दो पैरों से जमीन पर चलने में समर्थ हुआ। जमीन पर उतर आने पर भी उसे पेट तो भरना ही था। भयंकर हिमपात से फल फूलों का नितान्त अभाव हो गया था अतएव मनुष्य मांस भक्षण करने लगा जिसकी प्राप्ति के लिये उसने अन्य जीवों का आखेट करना प्रारंभ किया। यह है आदि मानव की कहानी।

प्रारंभिक मनुष्य

यह कहना कि मनुष्य बंदर की सन्तान है और उससे विकसित हुआ है, गलत है। ऊपर बताया गया है कि स्तन प्राणियों की जिस शाखा से मनुष्य का विकास हुआ उसी शाखा से तीन चार और शाखाएं निकलीं जिनके जीव क्रमशः विकास प्राप्त करके लेमूर, बन्दर और वनमानुष आदि हुये। इस प्रकार भले ही मनुष्यों का मूल ठीक वही हो जो बन्दरों का है किन्तु मनुष्य को बन्दर से विकसित होकर वर्तमान रूप धारण करने वाली बात में तो कुछ भी सचाई नहीं है। कहने को तो यदि आदि काल को ध्यान में रखा जाय तो मनुष्य का कोई न कोई संबंध सरीसृपों, उभयचरों और मछलियों तक से स्थापित हो सकता है।

मनुष्य अपनी प्रारंभिक अवस्था में कैसी शकल-सूरत का था और उसके शरीर के अवयव किस प्रकार के थे, इस पर विभिन्न स्थानों में प्राप्त हुये आदि मानव के शरीर के अवयवों से किंचित प्रकाश पड़ता है। जावा मनुष्य, पेकिंग मनुष्य और पिल्टडाउन मनुष्य के जो ढांचे या शरीर के अवयव प्राप्त हो सके हैं वे मनुष्य के शारीरिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं और क्रमों की एक झांकी मात्र हैं।

प्रागैतिहासिक मनुष्य

ज्यों ज्यों मनुष्य ने अपना विकास किया त्यों त्यों उसके शरीर के अवयवों का भी उसी प्रकार विकास होता गया। जैसा कि ऊपर बताया गया है इस प्राणी को पेड़ों से उतरकर पृथ्वी पर आने के समय से लेकर करोड़ों वर्ष तक अपने अस्तित्व की रक्षा के हेतु प्रकृति से समय समय पर घोर संघर्ष करना पड़ा था। इस अवधि के बीच चार बार तो पृथ्वी पर हिमयुग आया जब पृथ्वी बरफ से ढंक गई जिसके कारण भयंकर शीत और खाने के लिये फल फूल का नितान्त अभाव हुआ। इन दुर्दिनों में भी मनुष्य ने अपनी रक्षा कर ली। वह पहाड़ की कन्दराओं में रहा ए ं वन्य पशुओं का आखेट करने के लिये उसने पत्थरों और लाठियों का सहारा लिया।

मांस भक्षण प्रारंभ कर देने पर मनुष्य को जंगलों और पहाड़ों में ही रहने की आवश्यकता नहीं रही क्योंकि मैदानों में भी उसे गाय, बैल, आदि जानवर आसानी से प्राप्त हो जाते

थे। वह मैदानों में उतर आया और परिभ्रमणशील जीवन बिताने लगा। उसे भोजन के लिये कन्दमूल आदि या पशुओं का मांस मिल ही जाता था, आश्रय के लिये नदियों की घाटियां मिल गई। इन्हीं नदियों में उसे वे बट्टियां भी प्राप्त हो गईं जिन्हें तोड़फोड़ कर उसने अपने लिये नोकीले औजार बनाये। इन्हीं नोकीले औजारों को लाठी में लगाकर भाले की तरह या बिना बेंट की कुदाली की तरह उपयोग करके मनुष्य ने अपने कार्य में सहूलियत प्राप्त कर ली। अग्नि का उपयोग करना भी उसने सीख लिया जिससे वह जंगली जानवरों से अपनी रक्षा कर सकता था। फिर भी वह एक स्थान पर स्थाई होकर नहीं रहता था। गिरोह बनाकर शिकारी रूप में यहां वहां फिरा करता था। मानव के विकास के इस काल को पूर्व पाषाण युग कहा जाता है और उसका समय २५००० ईस्वी पूर्व से लेकर १५००० ईस्वी पूर्व तक कूता गया है।

क्रमशः मनुष्य ने और उन्नति की। तब उसे एक ही स्थान पर स्थिर होकर रहने की आदत पड़ गई जो स्वाभाविक भी थी। क्योंकि इस बीच वह बीज बोकर खेती करना सीख चुका था और अपना शिकारी का बाना उतारकर कृषक बन गया था। वह पशुओं को पालतू रखने लगा था जो उसके बड़े उपयोग के थे। इस काल में पत्थर के औजार तो पूर्ववत् ही बनाये जाते रहे किन्तु अब वे भलीभांति तराशकर बनाये जाते थे न कि पूर्वयुग की भांति तोड़ फोड़कर। वे भद्दे नहीं होते थे। घूमना छूट जाने के कारण मनुष्य अपने सहयोगियों के साथ एक स्थान पर रहने लगा था जिससे गांव बन गये। फुरसत के समय वह और भी कार्य कर लेता था जैसे चित्रकारी करना, ऊन बनाना इत्यादि इत्यादि। मनुष्य के इस प्रकार के जीवनवाले काल को हम उसका उत्तर पाषाण-युग कहते हैं जो लगभग १५००० ईस्वी पूर्व से ३००० ईस्वी पूर्व तक रहा।

उसके बाद धातुओं का युग आया; कहीं कांसे का युग और कहीं तांबे का युग। भारत वर्ष में ताम्रयुग में बने तांबे के औजार संख्या में अधिक मिलते हैं जो उस युग के मनुष्य ने तांबे की खोज करके पत्थर के औजारों के स्थान पर बनाना प्रारंभ किये थे। इसके साथ ही मकान, पुल आदि बन गये तो गांवों का रूप ही बदल गया। वे नगर में परिवर्तित होने लगे। कहा जाता है कि लिपि और वर्णमाला का आविष्कार भी मनुष्य ने ताम्रयुग में किया जिसके कारण उनका ज्ञान आगे की पीढ़ियों तक सुरक्षित रहा। ताम्रयुग का समय बहुत कम रहा क्योंकि मनुष्य ने शीघ्र ही एक और धातु का पता लगा लिया जो तांबे से भी अधिक टिकाऊ, मजबूत और उपयुक्त थी। वह धातु है लोहा जो मिल भी सरलता से जाता था। बस यहीं से लौह युग का प्रारंभ होता है। वह अनेक सभ्यताओं का विकास करता हुआ आज तक बराबर चला आ रहा है।

मानव वंश

संसार में जितने मनुष्य रहते हैं वे सभी एक प्रकार के नहीं हैं। उनमें शरीर का गठन और उंचाई, सिर और माथे की लम्बाई चौड़ाई, आंखों का रंग, शरीर का रंग, बालों की बनावट और रंग, नाक की लम्बाई-चौड़ाई, शरीर की गंध एवं रक्त समुदाय, आदि भी दृष्टि से भिन्नता पाई जाती है। अक्सर यह देखा जाता है कि एक भौगोलिक सीमा के भीतर रहने वाले मनुष्यों में लगभग एक से ही शारीरिक चिह्न पाये जाते हैं। ऐसे मनुष्यों को एक नस्ल या वंश का मान लिया जाता है। कभी कभी यह भी होता है कि एक वंश के एक स्थान से दूसरे स्थान में चले जाने अथवा दूसरे वंश के साथ शादी-व्याह कर लेने से उन दोनों की मिश्रित संतान में दोनों ही वंशों के चिह्न मिला करते हैं। इस प्रकार मानवशास्त्र यह अध्ययन करता है कि संसार के किस देश व जाति के लोगों में किस मानववंश के चिह्न हैं या उसमें किन किन मानववंशों के चिह्न हैं। यह अध्ययन करने के लिये मनुष्य को कपालमान के अनुसार दीर्घकपाल, मध्यकपाल और ह्रस्वकपाल, इन तीन वर्गों में बांटा गया है। उसी प्रकार नासिका-मान के हिसाब से चौड़ी नाक, चपटी नाक, आदि की जांच होती है। इसके अलावा रक्तसमुदाय के विश्लेषण से भी मानव नस्लों के भेद का पता लगता है।

उपरोक्त विशेषताओं के आधार पर मानवशास्त्रियों ने वर्तमान मानवसमाज को तीन मुख्य वंशों में विभाजित किया है। यथा (१) यूरोपीय (२) नीग्रो और (३) मंगोल। कुछ विद्वान इसे छह वंशों में बांटते हैं। उनके अनुसार वे छह वंश ये हैं (१) आष्ट्रेलियन, (२) नीग्रो, (३) मंगोल, (४) नोर्डिक, (५) अलपाईन और (६) मेडिटेरियन। भारतीय मानवसमाज के वर्गीकरण के लिये भी मानवशास्त्रियों ने प्रयत्न किया है। डाक्टर बी० एस० गुहा के वर्गी-करण के अनुसार भारत-निवासियों में निम्न लिखित छह वंशतत्वों का प्रतिनिधित्व पाया जाता है जैसे:—

(१) नीग्रिटो

(२) प्रोटो आष्ट्रेलायड

(३) मंगोलायड

(४) मेडेटेरियन

(५) पश्चिमी वृत्तकपालक या वेस्टर्न ब्रेशीसिफालस

(६) नॉर्डिक

डाक्टर बी० एस० गुहा का मत है कि नीग्रिटो वंश के लोग भारत में सबसे पहले आये थे। उनका रंग काला, बाल काले और ऊन जैसे, मोटे ओंठ और शरीर नाटा था। ये लोग अब भारतवर्ष में नहीं पाये जाते किन्तु अन्दमान में विद्यमान हैं तथा उनके कुछ तत्व असम की तरफ की कुछ जातियों में मिलते हैं। दूसरे वंश के लोग अर्थात् आष्ट्रेलायड़, नीग्रो वंश के बाद भारत में आये। इस शाखा और आष्ट्रेलिया के मूलनिवासियों की जातिगत शारीरिक विशेषताओं में अनेक समानताएं हैं। भारत में आकर निवास करने वाली इसी आष्ट्रेलाइड नस्ल के लोगों से आर्यों को लोहा लेना पड़ा था जिन्हें कि वेदों में नासिकाविहीन, निषाद या दस्यु कहा गया है। महाकौशल में पाई जाने वाली अधिकांश जनजातियां जैसे गोंड़, उरावं आदि इसी नस्ल की हैं। तीसरी शाखा याने मंगोलाइड लोगों के सिर लम्बे, नाक चपटी और गाल की हड्डी कुछ उभरी हुई होती है। इसके लक्षण पूर्वी भारत की नागा आदि जनजातियों में मिलते हैं तथा बंगाल में भी देखे जाते हैं। छत्तीसगढ़ की माड़िया गोंड़ जाति में भी इनका सम्मिश्रण है। इस प्रकार नीग्रो, आष्ट्रेलियन और मंगोल, इन तीनों वंशों में ही समस्त जनजातियां सम्मिलित हो जाती हैं। शेष बचे तीन वंशों याने भूमध्यसागरीय, पश्चिमी वृत्तकपालक और नॉडिक वंशों के सम्मिश्रण से भारत की अन्य जातियां बनी हैं। उदाहरण के लिये, भूमध्यसागरीय आर्य लोगों का वर्ण गोरा था, वे शरीर में लम्बे थे, उसकी नाक लम्बी और पतली थी तथा सिर लम्बे होने पर भी चौड़े कम। इन आर्यों ने भारत में प्रवेश कर सिंधु और गंगा के इलाके पर अधिकार कर के वहां के निवासियों-द्रविड़ों को दक्षिण की ओर खदेड़ दिया। आर्यों के बाद भी हमारे देश में अनेक अन्य जातियां आती रहीं जैसे यवन (यूनानी), शक, कुषाण, हूण, तातार, आदि। ये सब यहां आकर बस गईं और उन्होंने शादी व्याह भी यहीं किये जिससे रक्त का लगातार मिश्रण होता रहा, वर्णसंकर सन्तानें पैदा होती रहीं। इस मिश्रण और संमिश्रण से भारत की विविध जातियों का निर्माण हुआ है। पंजाब-काश्मीर में आर्य जातियों की प्रधानता है। वहां आर्य और ईरानियों का मिश्रण है। मध्यप्रदेश, राजपूताना, उत्तरप्रदेश और बिहार के कुछ हिस्सों में आर्य और द्रविड़ वंशों का संमिश्रण है। बंगाल, असम, नैपाल, भूटान और उड़ीसा तरफ मंगोल और द्रविड़ रक्त का मिश्रण तथा दक्षिण भारत में या तो द्रविड़ और नीग्रो रक्त का मिश्रण है अथवा अधिकतर द्रविड़ वंशों के लोग रहते हैं।

महाकौशल की जनजातियां

महाकौशल की जनजानियों को उनकी बोली के आधार पर दो मुख्य भागों में बांटा जा सकता है। १ द्राविड़ और २ मुण्डा। गोंड, कोरकू, आदि जातियां द्राविडी बोलियां बोलती हैं जबकि उरांव तथा उनके साथ ही अन्य जनजातियों की बोली मुण्डा शाखा की है। महाकौशल की जनजातियों में गोड़ों का प्रथम स्थान है और उनकी संख्या भी सर्वाधिक है। एक समय था जब इनका राजनैतिक प्रभुत्व प्रा:य समूचे प्रदेश पर स्थापित था और इनके नाम पर इस क्षेत्र का नाम गोंड़वाना पड़ गया था। गोंड़ लोग अधिकतर नर्मदा की घाटी और

बस्तर के इलाके में बसे हुए हैं। बस्तर के इलाके में उनकी अनेक जातियां हैं यथा, मुरिया, माड़िया, भतरा, परजा, आदि आदि। नर्मदा घाटी के गोंड़ों के अगरिया, परधान और परहैया ये तीन मुख्य भेद हैं। इनके अतिरिक्त राजगोंड, धुरगोंड़ आदि नाम भी सुपरिचिन हैं।

उरांव सिरगुजा–रायगढ़ जिलों में और आगे उड़िया प्रदेश में भी रहते हैं। कोरकू, बैतूल–निमाड़ तरफ, बैगा, मंडला-बालाघाट जिलों में, कोल, जबलपुर-मंडला-सागर-जिलों में, भील, निमाड़ और उससे लगे प्रदेश में तथा शबर, बिलासपुर-रायगढ़ जिलों में मुख्य रूप से पाये जाते हैं। इनके अलावा और भी अनेक जनजातियां यहां के एकान्त और शांत प्रदेश में निवास करती हैं। इन जनजातियों में से कुछ तो आज तक नागरी सभ्यता से एकदम दूर हैं और घने जंगलों में ही रहती हैं किन्तु कुछ जातियों ने अपने में काफी परिवर्तन कर लिया है। वे अपने पड़ोसी हिन्दुओं में मिल गये हैं।

जनजातियों के लोग स्वभाव के सीधेसाधे, सरल और सहिष्णु होते हैं। उन्हें सभ्य जातियों से दूर ही रहना पसंद है। किन्तु विश्वासपात्र बन चुकने पर सभ्य मनुष्यों का बड़ा आदर सत्कार और सम्मान करते हैं। सिर पर बड़े बाल रखना प्रायः सभी जनजातियों को अच्छा लगता है। स्त्रियों में शरीर गोदाने की प्रथा है जो शुभ समझा जाता है। जन्म-मरण, शादी-व्याह आदि के समय की रीतियां विचित्र विचित्र प्रकार की हैं। उसी प्रकार उनके त्यौहार और उत्सव भी तरह तरह के हैं जिनमें नाचने गाने और शराब पीने की प्रधानता होती है। बस्तर की मुरिया जाति में घोटुल या कुमारगृह की प्रथा है जहां रात्रि में गांव के सभी अविवाहित युवक युवतियां इकट्ठे होते हैं और रात भर वहीं रहते हैं। घोटुल में न केवल मनोरंजन के कार्यक्रम होते हैं बल्कि भावी गृहस्थ जीवन की शिक्षा भी वहां प्राप्त की जाती है। वन में निवास करने वाली इन जनजातियों में शिक्षा का अत्यन्त अभाव है यद्यपि देश के स्वतंत्र होने के पश्चात शासन द्वारा चल रही विकास योजनाओं ने इनके लिये शिक्षा देने की व्यवस्था कर दी है। अशिक्षित होने से इनमें अन्धविश्वासों की बहुलता है। ये जादू-टोने, भूत-प्रेत आदि को मानते हैं। अलग अलग जनजाति के अलग अलग जातिदेव हैं। कुछ जनजातियों ने हिन्दू देवी-देवताओं को भी अपना लिया है। जनजातियों के लोकोत्सव, लोकगीत, लोककथाएं और लोकनृत्य सभी मनोरंजक हैं और अध्ययन करने की वस्तु हैं।

उरांव

उरांव जनजाति मुण्डाओं की एक शाखा है। ये लोग छत्तीसगढ़ के सिरगुजा और रायगढ़ जिलों में तथा उनसे लगे अन्य राज्यों के प्रदेशों में निवास करते हैं। इनके दो भेद हैं कुरुख और किसान। उरांवों के मकान पहाड़ी स्थानों पर और प्रायः छोटे छोटे तथा घास फूस के बने होते हैं। पुराने समय में इनके गांवों में एक धुमकुरिया भी बनाई जाती थी जहां गांव के अविवाहित बालक-बालिकाएं रात में सोते थे। पांच छह वर्ष की अवस्था होने पर उरांव बालक के बायें हाथ पर अग्नि द्वारा जलाकर एक चिह्न बना दिया जाता है। उसी तरह बालिकाओं के मस्तक पर दूसरे प्रकार का चिह्न बनाया जाता है। इस प्रकार अग्नि से चिह्नित करना इनका जातीय संस्कार है जिसके सम्पन्न हो चुकने पर बालक बालिकायें धुमकुरिया में जाते हैं। बस्तर के मुरिया लोगों के घोटुल की तरह ये धुमकुरियां भी कुमारगृह होती थी जहां नाच गाने तथा मनोरंजन के अनेक कार्यक्रम चला करते थे। धुमकुरिया की प्रथा अब समाप्तप्राय हो गई है।

उरांवों का पहनावा सादा है। पुरुष करिया (कोपीन) पहनता है और ऊपर से पछेबड़ी (चादर) डाल लेता है। स्त्रियां कमर के चारों ओर हरी या जनाना कीचरी लपेटती हैं। वे हाथ पैरों में पीतल या कांसे के कड़ तथा गले में सुतिया और रंग विरंगे मणियों की माला पहनती हैं। उरांवों का रंग काला, शरीर सुदृढ़ और मांसल, ओठ मोटे, बाल कड़े और घने, तथा कपाल मध्यम होता है। इनका मुख्य भोजन चांवल, शराब और पक्षियों का मांस है। आजीविका के हेतु ये खेती करते हैं और मेहनत-मजदूरी भी कर लेते हैं। जादू-टोना, भूत-प्रेत आदि पर उरांवों का अटूट विश्वास है। यदि उनके यहां कोई बीमार पड़ता है तो गुनिया को बुलाकर झाड़-फूंक कराते हैं। जंगली जड़ी-बटियों के प्रयोग से भी उनके रोग अच्छे हो जाते हैं।

उरांवों के बहुत से गोत्र हैं जिनके नाम वृक्ष, लता, पशु, पक्षी, आदि के नाम पर रखे गये हैं। इनके यहां बच्चे के पैदा होने के आठ दस दिन बाद उनका नामकरण संस्कार होता है। उस दिन घर की सफाई होती है और मिट्टी के नये बर्तन लाये जाते हैं। पितृ पूजन के लिये बैगा को बुलाया जाता है। उसकी पूजा समाप्त हो जाने पर घर का सयाना एक दीपक जलाता है। वह एक दोने में पानी और दूसरे दोने में थोड़े से चांवल लेकर बैठता है। फिर पानी के दोने में पुरखों के नाम लेकर वह चांवल छोड़ता जाता है। जिस पुरखे के नाम पर दो चांवल मिल जाते हैं वही नाम नवजात बच्चे का रख दिया जाता है। उसके बाद बिरादरी के लोगों को भोजन कराया जाता है और अन्य कार्यक्रम चलते हैं।

जब उरांवों के यहां किसी की मृत्यु होती है तो वे उसकी सूचना ढोल बजाकर आसपास के लोगों को दे देते हैं। मुर्दे को गड़ाने और जलाने की दोनों प्रथाएं उरांवों में देखी जाती हैं। मृत्यु होने पर इनके यहां १० दिन तक पातक मनाया जाता है। दसवें दिन सुअर या मुर्गी मारकर उसका कोई अवयव जमीन में गाड़कर फिर मरघट में भात चढ़ाने जाते हैं। वहां से दाह किये मुर्दे की अस्थियां चुनकर घर ले आते हैं और उन्हें किसी एकान्त स्थान में सीके पर टांग देते हैं। उसके बाद घर की सफाई करते हैं। और बाल बनवाकर शुद्ध होते हैं। इसी समय बिरादरी के लोगों को भोजन कराया जाता है। अस्थियों का विसर्जन बाद में होता रहता है। उरांवों के प्रत्येक विशिष्ट अवसर पर पितृपूजन होता है। पितरों को ये लोग बड़ा सम्मान देते हैं। जब नई फसल तैयार हो जाती है तो पितरों के नाम पर एक मुर्गे की बलि दी जाती है। वह बलि पितरों को मिली कि नहीं इसकी जांच के लिये ये लोग मुर्गियों के सामने चांवल फेंकते हैं। यदि मुर्गियों ने उन चांवलों को चुग लिया तो समझते हैं कि पितरों ने बलि को स्वीकार कर लिया है।

शादी-ब्याह के मामले में उरांव लोग यह ध्यान रखते हैं कि जहां तक हो गांध के गांध में संबंध स्थापित नहीं हो। इनके यहां माता पिता ही धिवाह तय करते हैं यद्यपि कभी कभी गंधर्व धिवाह भी हो जाते हैं। लड़की पसन्द आ जाने पर लड़के का बाप धधूशुल्क निश्चित करने के लिये लड़की वाले के यहां पहुंचता है जहां लड़की पक्ष के सभी लोग एकत्र होते हैं। उस समय लड़की अपने सिर पर शराब की एक हंडिया रखकर वहां आती है। भावी ससुर उस हंड़िया को लड़की के सिर से उतारकर अपनी छाती से लगा लेता है और लड़की को नेग देता है फिर दावत्त चलती है जिसमें लड़की आखीर तक अपने होने वाले ससुर के पास बैठी रहती है। इस रस्म को पानबंधी (सगाई) कहते हैं।

विवाह के समय वर और वधू दोनों को पीले कपड़े पहनाये जाते हैं। वे अपने अपने रिस्तेदारों की गोद में चढ़े रहते हैं। बारात की अगवानी के समय तरह तरह के मनोरंजन कार्यक्रम होते हैं। बारातीजन रात भर मांढ़र (ढोल) के सहारे नाचते हैं। सबेरे लड़की की मां उसे लेकर झरने पर जाती है और माटी के कलश में जल भर कर लाती है। वहां से आ चुकने पर वरवधू को हल्दी तेल लगाकर स्नान कराते हैं। सायंकाल इस जोड़ी को पीले कपड़े पहिना-कर मंडप में लाया जाता है जहां हल का जुवा, तृण और एक सिला रखी होती है। वर और वधू को उसी सिल पर खड़ा करके एक लम्बे कपड़े से लपेट देते हैं। केवल उनके हाथ पैर खुले रहते हैं। फिर वर, वधू के मस्तक में सिन्दूर की तीन रेखाएं खींच देता है। वधू भी उसी प्रकार वर के माथे पर तीन रेंखायें लगा देती हैं। सुहागिन स्त्रियां हरी डाली से कलसे का जल उन दोनों के ऊपर छिड़कती हैं और कहती हैं कि 'विवाह हो गया, विवाह हो गया' आदि आदि। तभी बाहर ढोल बजते हैं और वर वधू पर लपेटा गया कपड़ा अलग कर उन्हें

भीतर ले जाते हैं। यह उरांवों के विवाह की जातीय प्रथा है किन्तु अब उसमें बहुत कुछ हिन्दूपन आ गया है। इनका शादी व्याह के अवसर पर नाचा जाने वाला पैंकी नृत्य बड़ा ही मनोरंजक होता है।

उरांवों की धार्मिक मान्यता और उनके त्योहार भी मनोरंजक होते हैं। 'धरमा' नामक देवता उरांवों का प्रधान देवता है जिसकी मनौती के लिये ये लोग सफेद मुर्गे की बलि देते हैं। उरांव लोग सुख और दुख को परमात्मा के चपरासी मानते हैं। उनका विश्वास है कि अच्छे बुरे कर्मों का फल ईश्वर अपने चपरासियों को भेजकर देता है। 'धरमा' देवता के अलावा उरांव लोग चोरदेवा, चुडैल, चण्डी और भूतदेव का भी पूजन करते हैं। इधर इन लोगों ने हिन्दू देवी-देवताओं को भी अपना लिया है। किन्तु उनकी पूजा में भी जानवरों की बलि देना प्रमुख है। बहुत से उरांव ईसाई बना लिये गये हैं। उनके गले में 'क्रास' लटकता रहता है।

उरांवों के त्योहारों में सरहुल, करमा और कन्हारी प्रमुख हैं। सरहुल अप्रैल के महिने में पड़ता है। उसमें सूर्य के नाम पर एक सफेद मुर्गा और धरती के नाम पर एक मुर्गी की बलि दी जाती है। सरना बूढ़ी के नाम से पांच मुर्गियां जंगल में मारी जाती हैं। उरांवों का विश्वास है कि इससे वर्षा अच्छी होती है। करमा त्योहार में करमा वृक्ष को लाकर लगाते हैं और उसे बलि देते हैं। रात में शराब पीकर वृक्ष के चारों ओर नाचते हैं। कन्हारी त्योहार फसल के तैयार हो चुकने पर मनाया जाता है विशेषकर किसी मंगलवार के दिन। इस दिन खेतों में धान की राशि पर मुर्गे का रक्त सींचा जाता है। यह संस्कार किये बिना कोई भी उरांव किसान अन्न को अपने घर नहीं ले जाता। इस जाति के लोगों को यात्राओं में जाना बहुत पसंद है। तब ये लोग सजधज कर झंडे ले लेकर ढोल और बांसुरी बजाते निकलते हैं और कहीं कहीं लकड़ी के घोड़े सजाकर निकाले जाते हैं।

कोरकू

कोर शब्द का अर्थ मुंडारी भाषा में मनुष्य होता है और कू बहुवचनवाची विभक्ति है। कोरकू जनजाति के लोग होशंगाबाद, बैतूल, और निमाड़ जिलों तथा विदर्भ के अमरावती जिले में निवास करते हैं। इनका वंश मुंडारी है और भाषा भी उसी वंश की है जिसे कोलारियन कहते हैं। कोरकू लोग ईमानदार और सीधे होते हैं। वे खेती-किसानी और शिकार दोनों करते हैं। उनकी जात के कुछ लोगों के पास जमींदारियां भी थीं। कोरकू लकड़ी और घास काटने का काम करते हैं। आज कोरकू बड़े शान्तिप्रिय नागरिक हैं किन्तु पुराने जमाने में ये लोग अवसर पाकर पहाड़ से उतरकर निकट के गांवों को लूट लिया करते थे। मेलघाट के अरण्यमय प्रदेश को मोवास कहा जाता है और वहां के कोरकू, मोवासी कोरकू कहलाते हैं। ये मोवासी कोरकू मुगल और मराठा शासन के लिये सिर दर्द बन गये थे क्योंकि वे निकटवर्ती गावों को लूट ले जाते थे। इसलिये मुगलों ने और फिर मराठों ने भी इनके लिये विशेष प्रबंध किया था ताकि ये लूटमार न करें।

आदि कोरकू (मूल कोरकू) और राजकोरकू इस प्रकार इस जनजाति के दो भेद हैं। राजकोरकू अपने को क्षत्रिय बताते हैं। उनके रीति-रिवाज, खानपान आदि हिन्दुओं जैसे हो गये हैं। वे महादेव को अपना मुख्य देवता मानते हैं जिनके प्रसाद से उनकी जाति की स्थापना हुई। गाय को भी पूज्य मानते हैं और उसका मांस नहीं खाते। आदि कोरकू भी अपना पूर्वस्थान महादेव के पहाड़ को बताते हैं। उनका विश्वास है कि उनके आदि पुरुष को महादेव ने महादेव पहाड़ पर पैदा किया था। आदि कोरकू राजा रावण और उसी प्रकार भीमसेन को भी मानते हैं। इन पहाड़ी कोरकुओं के कई भेद हैं तथा गोत्र भी तरह तरह के हैं। मुवासी कोरकू, छत्तीसगढ़, झारखंड और मेलघाट तरफ पाये जाते हैं। उनका मुख्य देवता चितावरदेव है जो चितावरवृक्ष में रहता है। दूसरे देवता घनश्याम की पूजा दशहरे में की जाती है। बैगा इनका पुजारी होता है। बहुत से हिन्दू देवी देवताओं को भी ये लोग पूजने लगे हैं। बावरिया जाति के कोरकू बैतूल जिले में भंवरगढ़ के निकट मिलते हैं। रूमा जाति अमरावती जिले में और बोंडोंया पचमढ़ी के पास।

कोरकू सगोत्रीयों में विवाह नहीं करते, अन्य गोत्रवालों में ही शादी ब्याह का संबंध स्थापित करते हैं। अधिकतर कोरकू हिन्दू तरीके से विवाह करने लगे हैं। किन्तु विधवा-विवाह और तलाक की प्रथा उनमें अब भी पहले जैसी ही है। विवाह के पूर्व घर की साफ सफाई होती है और भुमका (पुजारी) को बुलाकर मुतुवा देव की पूजा कराई जाती है। लड़के का पिता बेर के पेड़ के नीचे जाकर अपने देवताओं को विवाह में सम्मिलित होने के लिये निमंत्रण देता है तथा

लोग पेड़ के नीचे जाकर नाचते गाते हैं। विवाह लड़की के गांव में ही होता है। वरपक्ष बारात लेकर शुक्र, बुध या सोमवार को वहां पहुंचता है। विवाह की विधि बड़ी सादी होती है। मंडप में वरवधू के ऊपर पानी छिड़कते हैं और वर, वधू के गले में सुतिया पहना देता है। विवाह के पश्चात कुलदेवताओं की पूजा आदि होती हैं।

मृतकसंस्कार के नाते ये लोग मुर्दे को जमीन में गाड़ देते हैं। उसका मुख दक्षिण दिशा की ओर रखा जाता है। मुर्दे को नंगे शरीर से दफनाया जाता है। मृत्यु के दसवें दिन शुद्धि की जाती है। उस दिन बाल बनवाना, घर की सफाई करना तथा बिरादरी के लोगों को भोजन देना आदि होता है। सतपुड़ा तरफ के कोरकू केवल छोटे बच्चों को ही उनके मरने पर गाड़ते हैं किन्तु वयस्क लोगों के मुर्दे जला देते हैं।

अन्य जनजातियों की भांति कोरकू भी जादू टोना और भूतप्रेत में विश्वास रखते हैं। इनके मान्य देवताओं में पचमढ़ी के महादेव तो मुख्य हैं ही साथ में बहुत से हिन्दू देवी देवता भी आ गये हैं। इनके अलावा डोंगरदेव, बाघदेव, मुतुवादेव, कुनवरदेव, और माता (चेचक) की भी पूजा होती है। इनका पुजारी भूमक जाति का होता है। पूजा में बकरे और मुर्गे की बलि दी जाती है।

गोंड़

गोंड़ महाकोशल की सबसे बड़ी जनजाति है। इसकी अनेक शाखाएं हैं जो मंडला, छिंदवाड़ा और बस्तर इलाके में निवास करती हैं। बस्तर इलाके की जातियों में मुरिया, माड़िया, जैसी सुख्यात जातियां सम्मिलित हैं जिनके रहन-सहन और रीति-रिवाज कौतुक की वस्तु हैं।

गोंड शब्द की उत्पत्ति के संबंध में मतभेद हैं। कुछ लोग उसकी व्युत्पत्ति तेलगू भाषा के कोंड (अर्थात पहाड़) शब्द से करते हैं। गोंड लोग अपने को कोइ या कोईतार कहते हैं जिसका उनकी भाषा में अर्थ 'मनुष्य' होता है। गोंड जाति केवल जनजाति होने से ही ज्ञात नहीं है बल्कि इतिहासप्रसिद्ध भी है। उसी के नाम पर पुराने समय में इस प्रदेश का नाम गोंडवाना पड़ा था जिस का उल्लेख आइने अकबरी में भी मिलता है। सैकड़ों वर्षों तक गोंड़ों ने मध्यप्रदेश के बहुत से भू-भाग पर शान के साथ राज्य किया था। उनके राजा संग्रामसिंह बाबन गढों के अधिपति थे। रानी दुर्गावती अपनी अटूट वीरता के लिये प्रसिद्ध है।

गोंडों के मुख्य भेद दो हैं, राजगोंड और धुरगोंड या आदि गोंड। राजगोंड अपने को क्षत्रिय कहते हैं। उनका धर्म और उसी प्रकार रीति-रिवाज भी हिन्दुओं जैसे हैं। वे जनेऊ धारण करते हैं और अपने सभी संस्कार ब्राह्मणों से करवाते हैं। राजगोंडों के गोत्र भी क्षत्रियों के ही हैं।

धुरगोंड़ अनेक शाखा-प्रशाखाओं में बटे हुये हैं। छत्तीसगढ़ में ये लरिया कहलाते हैं लांजिहा गोंड, मंडला गोंड आदि इतकी स्थानवाची जातियां हैं, बस्तर इलाके में तथा चांदे की तरफ माड़िया गोंड़ रहते हैं। इनके गोत्रों की संख्या सैकडों की तादाद में हैं। गोत्रों के नाम देवताओं की पूजन संख्या पर रखे गये हैं। जैसे येरुंगपेंग (सात देवता वाले) सारुंगपेंग (छह देवता वाले) सयुंगपेंग (पांच देवता वाले) नालुंगपेंग (चार देवता पूजने वाले)। इन देवताओं का एक एक वाहनपशु है जिसे पवित्र समझा जाता है। सात देवों का सेही, छहदेवों का बाघ, पांचदेवों का सारस और चारदेवों का कछवा। इन चार मुख्य विभागों में से प्रत्येक में ही अनेक गोत्र हैं जिन्हें बड़ा महत्व दिया जाता है। समगोत्री भाई-बहन होते हैं और उनमें आपस में विवाह नहीं होता। हां, ममेरे फुफेरे भाई बहिनों में आपस में विवाह अवश्य कर लेते हैं। मामा की लड़की से विवाह करने का हक होता है। इसके अलावा गोंडों में दूध लौटाने की प्रथा को भी महत्व दिया जाता है। जिस घर में लड़की दी गई हो, उस घर की लड़की को ब्याहकर अपने घर ले जाना, दूध लौटाना कहलाता है। इसलिये गोंड़ अपने निकटवर्ती पुराने संबंधियों के घर में विवाह संबंध स्थापित करना अधिक पसंद करते हैं।

पुराने जमाने में जो कुवांरा गोंड जिस कुंवारी गोंडिन को पकड़ कर ले आता था उसी के साथ उसका विवाह हो जाता था पर अब यह प्रथा प्रायः लुप्त हो गई है। गरीब गोंड़ों में लमसेना या लमझना की रीति है। क्वांरा लड़का, लड़की के बाप के यहां चाकरी करके कुछ दिनों बाद उसकी लड़की से विवाह करता है। धनवान राजगोंड़ों में विवाह वर की तलवार भेजकर सम्पन्न हो सकता है; वधू तलवार सहित स्तंभ की सात बार परिक्रमा करती है। मंडला की तरफ, विवाह के एक दिन पहले लड़की रात में गांव में किसी के घर जाकर वहां छिप जाती है। वर का भाई या अन्य लोग उसे खोजते हैं। पता लगने पर लड़की भाग कर अपने पिता के घर पहुंचती है और एक खंभे पर चढ़ जाती है जहां से वर उसे जनवासे ले जाता है। मंडप के बीच में महुवे के स्तंभ की दोनों सात बार परिक्रमा करते हैं। भांवर हो चुकने पर यह जोड़ी घर में प्रवेश करती है, तब मुर्गी का बच्चा काटकर द्वारपर उन दोनों पर उसका रक्त छिड़कते हैं। बाद में देवताओं के नाम पर अनेक मुर्गियों की बलि दी जाती है और भोज आदि होते हैं। छिंदवाड़ा के गोंड़ों में वधूशुल्क देने की प्रथा है। वधू पक्ष के लोग वर के गांव जाकर दोनों का विवाह सम्पन्न करते हैं। विवाह के अवसर पर दूल्हादेव की मनौती होती है।

गोंड़ लोग अपने मुर्दे मरघट में लेजाकर गाड़ देते हैं किन्तु पुराने समय में जो जहां मरता वहीं गाड़ दिया जाता था। राजगोंड़ों के मृतकसंस्कार हिन्दुओं जैसे होते हैं। जादू-टोना, भूत-प्रेत, चुडैल आदि पर गोंड़ों को पक्का विश्वास है। पितरों की भी वे मनौती करते हैं। इनके अलावा दूल्हादेव, खेरमाई, माता आदि की पूजा करते हैं। मंडला के प्रत्येक गोंड घर में एक देवस्थान रहता हैं जिसमें उनके कुलदेवताओं का पूजन होता है। जिनके यहां बच्चे होते हैं वे झुलना देवी को पूजते हैं। उसी प्रकार नर्मदा माई और महादेव भी गोंड़ों के पूज्य हैं। रहन सहन में ये लोग सादे हैं किन्तु राजगोंड तो पूरे नागरिक बन चुके हैं। यद्यपि गोंड़ों ने और विशेषकर राजगोंड़ों ने हिन्दुओं के बहुत से त्यौहार अपना लिये हैं फिर भी इनके अपने त्यौहार हैं। फसल के आने पर 'चैत्री' का त्यौहार होता है।जिसमें नया अन्न खाया जाता है। उस अवसर पर खूब उत्सव और नाच गाना होता है। भादों में नया चावल पकने पर 'नया खाई' का त्यौहार होता है। महुआ में बौर लगने पर भी उत्सव होता है और होली के समय जमकर नाच गाना होता है। गोंड़ों का 'करमा' नाच सुप्रसिद्ध है।

माड़िया गोंड़

बस्तर के इलाकों में गोड़ों की अनेक उपजातियों का निवास है उनमें मुरिया और माड़िया विशेष प्रसिद्ध है। माड़िया घने जंगलों में वास करते है, उनकी एक शाखा मैदानों में भी रहती है। मुरिया लोगों के घोटुल या कुमारगृह कौतुक की वस्तु है।

इन जातियों के रीति रिवाज और रहन सहन मंडला या छिंदवाड़ा के गोंड़ों से काफी भिन्न हैं। ये आज भी कम वस्त्र पहनते हैं। किसी समय में वृक्षों की छाल का भी उपयोग करते थे। माड़िया स्त्रियों की छाती खुली रहती है किन्तु जब कभी ये बाजार करने या शहर आतीं हैं तो छाती को ढंक लेतीं हैं। पुरुष भी एक छोटे से वस्त्र खंड से अपना काम चला लेता है। यदि पैसे वाला हुआ तो बंडी पहन लेता है और कुछ आभूषण भी धारण कर लेता है। बस्तर की ये जातियां श्यामवर्ण की होती हैं। उनके सिर गोल, मुंह चौड़ा, ओंठ मोटे, केश काले और घने होते हैं। मूछ और दाढ़ी में कम बाल होते हैं, जिन्हें वे मुड़ा लेते हैं। मुरिया-माड़िया शराब के बहुत शौकीन हैं। उनका कोई भी धार्मिक या सामाजिक उत्सव बिना शराब के नहीं होता। धनुषबाण, कुल्हाड़ी, (टंगिया), आदि इनके मुख्य हथियार हैं जिनसे ये पशुपक्षियों का आखेट करते हैं और लकड़ी आदि काटते हैं। अशिक्षित और गरीब होने पर भी ये जातियां ईमानदारी में उत्कृष्ट हैं, उन्हें सच बोलना पसन्द है और दगाबाजी से दूर रहते हैं। बाहरी लोगों से ये दूर रहना ही पसन्द करते है परन्तु यदि एक बार उनका विश्वास मिल जाय तो वे आजीवन उनके विश्वासपात्र बन जाते हैं। पूर्वीय सीमांत के नागाओं की तरह ये खूंखार नहीं होते प्रत्युत सीधे सादे, सत्यप्रिय, निश्छल एवं निष्कपट होते हैं। स्वामी--भक्ति की भावना इनमें कूट कूट कर भरी रहती है। एक बीड़ी, एक चुटकी तंबाखू अथवा पत्ते के दोनों में एक घूंट शराब, इनके साथ सेवन करनें से ये आपके परम मित्र बन जाते है।

माड़िया लोग समगोत्रियों में विवाह नहीं करते। विवाह वधू के ग्राम में ही होता है। बारात पहुंचने पर भोज का आयोजन होता है। विवाह विधि सरल है। वर-वधू कंबल ओढ़कर मंडप में आते हैं। उस समय घर का मुखिया देवताओं का पूजन कराकर दोनों का हाथ मिलाता है। पश्चात् दोनों पर कलसी से जल छिड़का जाता है। उस रात में नया जोड़ा तो एक कमरे में निवास करता है और बाराती लोग बाहर रातभर नाचते कूदते हैं। विवाह-विच्छेद और विधवा-विवाह दोनों इनके यहां मान्य है। रजस्वला स्त्री को छूना पाप समझते हैं, उसकी छाया को भी अपवित्र मानते हैं। इसलिये पांच दिन तक वह घर के बाहर ही रखी जाती है।

बस्तर में कोई माड़िया मर जाता है तो उसके मरने की खबर ढ़ोल पीटकर दूसरे गांव

वालों को दी जाती है। दूसरे गांव से रिश्तेदारों के आ चुकनें के बाद ही दूसरे-तीसरे दिन मृतक संस्कार होता है। ये लोग मृतक को उसके कपड़े लत्ते आदि के साथ गाड़ते हैं और साथ में थोड़ा सा भोजन भी रख देते हैं। फिर यह देखते है कि मृतक पितरों में जाकर मिला कि नहीं। इसकी जांच के लिये एक कटोरे में जल भरकर दो चांवल छोड़ते हैं। यदि वे दोनों चांवल बहकर आपस में मिल जाते हैं तो समझा जाता है कि मृतक पितरों में मिल गया। नहीं तो, एक मास तक पितरों की मनौती होती है और फिर दुबारा उसी प्रकार जांच होती है। जब मृतक का पितरों में मिलना सिद्ध हो जाता है तो गांव का पंडा गांव की सीमा पर त्रिशूल या खूंटी गाड़कर आसपास पत्थरों की ढेरी लगा देता है। माड़िया लोग मृतकों के पत्थर और लकड़ी के कलात्मक स्मारक भी बनाते हैं।

मरने के तीसरे दिन मरे का भात खाते हैं जो किसी नाले में पकाया जाता है। फिर घर की सफाई करके पुराने भांड़े फेंक देते हैं और नये बरतनों में अन्न पकाते हैं। दसवें दिन घर के लोग मुन्डन कराते हैं। उसी दिन बकरा मारकर दावत भी दी जाती है, जिसमें शराब की अधिकता रहती है।

बस्तर के गोंड़ों के नाना देवता हैं। किसी की सर्प के डसने पर पूजा होती है तो किसी की संतान के लिये। बीमारी से अच्छे होने के लिये भी देवताओं की पूजा की जाती है और उन्हें बलि दी जाती है। बूढ़ा देव, बाघदेव, सर्पदेव, आदि के अलावा ये भूदेवी की भी पूजा करते हैं। इन लोगों का विश्वास है कि जो व्यक्ति अकाल मृत्यु से मरते हैं वे पुरखों में नहीं मिलते। इसलिये जब किसी को जंगल में कोई बाघ मार डालता है या सांप डस लेता है तो उसे उसी स्थान में दफना दिया जाता है और कुल के मरघट में नहीं लाते।

बस्तर की जनजातियों के नृत्य और कुमारगृह (घोटुल) महत्वपूर्ण हैं। विभिन्न जातियों के नृत्यों में अपनी अपनी विशेषता रहती है। मुड़िया नृत्यों में पुरुष अपने सिर पर गौर जानवर के सींग लगाकर नाचता है जिनमें मोर पंख बंधे रहते हैं इनकी यह वेश भूषा अत्यन्त चित्ताकर्षक दिखती है। पुरुष बड़े बड़े ढोल अपने गले से लटकाकर नाचते हुये उन्हें बजाते हैं और गोल घूमते हैं। उनके साथ बालिकाओं का दल अपनी घुंघरूवाली लकड़ियां लेकर नाचती हैं जिन्हें वे बीच बीच में ठोक ठोक कर बजाती हैं। पहाड़ी माड़िया नाचते समय सूखे पत्ते की लम्बी छाल के घाघरे पहनते हैं। ढोलक और घुंघरू के स्वर के लय के साथ ही पद चाप पड़ते हैं, जिनमें एक अनोखा सामंजस्य रहता है।

घोटुल एक प्रकार का कुमार गृह होता है। वह बस्ती के बाहर होता है जहां सभी अविवाहित युवक युवतियां रात में बसेरा करते हैं। घोटुल का प्रबंध बहुत ही सुन्दर होता है। उसे एक प्रकार से समाज सेवा का शिक्षण केन्द्र कहा जा सकता है। इस में युवक युवतियों के

लिये एक एक नेता होता है जिसके आदेश सब मानते हैं। जब नेता का विवाह हो जाता है तो दूसरा नेता चुना जाता है। घोटुल में युवक युवतियां अपना जीवन साथी चुनते हैं। बाद में उनका विवाह हो जाता है। घोटुल में इनके प्रेमालाप को गोपनीय रखा जाता है। अकसर यह देखा जाता है कि जिन युवक युवतियों में आपस में प्रेम हो जाता है वे यदा कदा ही घोटुल में एक साथ देखे जाते हैं। यह उनके शील एवं लज्जा का परिचायक है।

बंजारा

बंजारे सारे भारतवर्ष में फैले हुये हैं। इनका मुख्य काम वाणिज्य है। इनका प्राचीन नाम वाणिज्यकार हो सकता है। ये लोग अपने को उच्च वर्ण और कभी कभी राजपूत क्षत्रिय भी कहते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि बंजारों के पूर्वज दक्षिण भारत में मुगलों की सेना के साथ आये थे और चारण बंजारों का राठौर परिवार उसी समय विदर्भ में आकर बसा था। ऐसा भी कहा जाता है कि सन् १६३० में बंजारों के नायक भंगी और जंगी अपने १,८०,००० बैलों के साथ आसफजां की फौज का सामान ढ़ोते थे।

बंजारे पूर्व की भांति आज भी नाज ढ़ोने या इसी प्रकार के अन्य धंधे करते हैं। इनके तेवहारों में दशहरा और दीवाली मुख्य हैं। दीवाली के दिन पितरों को पानी देते हैं। जादू टोने पर भी इन्हें विश्वास है। किसी के बीमार पड़ जाने पर डायन और चुडैल का असर माना जाता है और तदनुसार प्रबंध किया जाता है। बंजारे आम तौर से हिन्दू रीति-रिवाजों और धर्म को मानते हैं किन्तु कहीं कहीं ये बंजारे बैल की भी पूजा करते हैं। उस बैल को खूब सजाया जाता है, उस पर लाल रंग की रेशमी झूल डाली जाती है, उसके पैरों और गर्दन पर पीतल के कड़े और मालाएं पहनाई जाती हैं। यह बैल दिनभर चलकर शाम को जहां ठहर जाता है बंजारों का दल भी वहीं रात भर के लिये पड़ाव डालता है। बैल के मर जाने पर उसका मंदिर भी बनवाते हैं। बंजारे गुरू नानक को मानते हैं।

बंजारों का पहनावा विचित्र है। स्त्रियां लाल या हरे रंग का लहंगा पहिनती हैं जिस पर कढ़ाई का काम किया हुआ होता है। इनकी चोली कसी हुई रहती है। उसे पीठ पर बन्दों से बांधा जाता है। बन्दों के सिरों पर कौड़ियां लटकती रहती हैं। बंद रंग बिरंगे होते हैं। इसी प्रकार ओढ़नी पर भी काम किया हुआ होता है। ओढ़नी का एक सिरा सिर के ऊपर ओढ़ा जाता है और दूसरा सिरा खोंसा जाता है। ओढ़नी के छोर पर कौड़ियां लगी रहती हैं। बंजारों के आभूषण तरह तरह के होते हैं। उनमें कौड़ियों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हैं। सधवा स्त्री गले में चांदी की हंसली पहनती है तथा उसके हाथ पीतल और सींग की चूड़ियों से भरे रहते हैं। वे नाक और कान में तरह तरह के आभूषण पहनती हैं।

बंजारे डंडा नाच नाचते हैं। इनके भोजन में मांस और शराब भी रहती है। मरने पर मुर्दे को जलाते हैं। श्राद्ध भी करते हैं किन्तु पितृपक्ष में नहीं बल्कि दीवाली के अवसर पर।

अन्य जनजातियां

उपरोक्त जनजातियों के अलावा और भी बहुतेरी जनजातियों का छत्तीसगढ़ में निवास है जैसे बैगा, कोरबा, पाण्डु, भुइयां, भील, भतरा, परजा, अगरिया, परधान, कोल, शबर आदि। इनके अपने अपने रीति-रिवाज और अपने अपने विश्वास हैं किन्तु इन जनजातियों की सामग्री का संग्रहालय में प्रतिनिधित्व न होने से उनके संबंध की जानकारी इस प्रदर्शिका में नहीं दी जा रही है।

दीर्घा में प्रदर्शित वस्तुएं

संग्रहालय की मानवशास्त्रीय दीर्घा में माड़िया, गोंड़, कोरकू, उरांव और बंजारा लोगों के कपड़े-लत्ते, गहने-भांडे, शस्त्र, वाद्य, एवं अन्य दैनिक उपयोग की वस्तुएं प्रदर्शित की गई हैं जो कौतूहलवर्धक होने के साथ-साथ जनजातियों की रुचि और कलाशैली का प्रतिनिधित्व करती हैं। एक शोकेस में छत्तीसगढ़ के तरह तरह के वाद्यों का प्रदर्शन है। दूसरे शोकेस में जनजातियों के धनुषबाण तथा चिड़िया मारने के गुट्टे प्रदर्शित हैं जिनके साथ बच्चों के खेलने की लकड़ी की तलवारें, कटारें, आदि रखी गई हैं। नृत्य की पोशाकों में सबसे अधिक मनोरंजक हैं उरांव और माड़िया जाति की पोशाकें। उरांव पुरुष नृत्य के समय मोरपंख की लम्बी झाल अपने शरीर से बांधते हैं और माढ़र नामक ढ़ोल बजाते हैं। माड़ियों के नृत्यों का दूसरा ढंग है। उसमें पुरुष अपने सिर पर गौर जानवर के सींग लगा लेता है जिसके पट्टे में मोरपंख खुसे रहते हैं। माड़िया पुरुष का ढोल काफी लम्बा होता है जिसे वे गले में लटकाते हैं। स्त्रियां नाचते समय सिर पर पीतल का पट्टा बांधती हैं और हाथ में एक लकड़ी जिसके सिरे पर घुंघरू जैसी बंधी रहती हैं ले लेती हैं जिसे वे नाचते समय जमीन पर पटक पटक कर ताल मिलाती हैं।

अलग अलग शोकेसों में भिन्न-भिन्न जातियों के पहनने के कपड़े हैं। माड़िया जाति के पुरुष धोती और काली जाकेट पहनते हैं जबकि स्त्रियां तरह तरह के कांसे जस्ते के आभूषणों को गले में धारण करती हैं जिनके साथ मूंगामाला तथा सफेद, नीले, काले और लाल मनकों की तरह तरह की मालाओं की बहुलता होती है। उरांव पुरुष धोती, कुरता और पगड़ी पहनता है किन्तु नाचते समय तुर्रा भी लगा लेता है। उरांवों की स्त्रियां पैरों में कांसे की पैरी, हाथों में बेरा, अंगुलियों में मुंदरी, पैर की अंगुलियों में चुटकी तथा गले में हंसुली और मालाएं पहनती हैं। बंजारा पुरुष की पगड़ी, धोती और बाराकसी उन्नत श्रेणी की है जबकि उनकी स्त्रियों की कचोली, ओढ़नी और लहंगा रंग बिरंगे तथा अलंकृत हैं। मंडला जिले के गोंड़ों का पहनावा दो एक विशिष्ट आभूषणों को छोड़कर स्थानीय अन्य जातियों के पहनावे के अधिक सन्निकट है। पुरुष धोती, बंडी, पगड़ी पहनते हैं, आभूषणों में पैंजन, लुरकी और कड़े आदि धारण करते हैं। उसी प्रकार स्त्रियां कांच की चूड़ियां पहनती हैं तथा आभूषणों में पटेला, हमेल, सूता, बाली आदि का उपयोग करती हैं। इनकी धोती (साड़ी) और ओढ़नी भी परिष्कृत हैं। कोरकू जनजाति के पुरुष बांसुरी बजाते हैं। वे धोती पहनते हैं और ऊपर के भाग में बंडी आदि। स्त्रियां साड़ी, चोली आदि वस्त्रों के अलावा कंकनी, हंसुली, बिछिया, अंगूठी, सूता, बांगड़ी आदि आभूषण धारण करती हैं। दैनिक उपयोग की वस्तुओं में माड़िया जाति की पत्तों की बरसाती,

एक पल्ले का तराजू, घास के बीजों की माला, तरह तरह की रंग बिरंगी मालाएं, पत्तों की बनी टोकनी तथा छाल से बनाये गये वस्त्र विशेष आकर्षक हैं। लकड़ी के कंघे और हेयर पिन तथा तमाखूदानियां भी कलापूर्ण हैं।

निर्देश ग्रन्थ

हिन्दी

प्रयागदत्त शुक्ल :	विंध्याटवी के अंचल में
भगवानदास केला :	हमारी आदिम जातियां
ब्रह्मदत्त दीक्षित :	वनवासी भारत

अंग्रेजी

दुबे, एस० सी० :	एन्थ्रोपोलाजी
एल्विन, बेरियर :	दी बैगा
	मारिया मरडर एन्ड सूइसाइड
	दी मुरिया एण्ड देअर घोटुल
	मिथ्स ऑफ मिडिल इंडिया
	दी ट्राइबल आर्ट आफ मिडिल इंडिया
गुहा, बी० एस० :	रेसियल इलेमेन्ट्स इन दी इंडियन पापुलेशन
ग्रिग्सन, डब्ल्यू० बी० :	दी मारिया गोंडस आफ बस्तर
हट्टन, जे० एच० :	कास्ट इन इंडिया
मजुमदार, डी एन० :	दी अफेयर्स आफ ए ट्राइब
राय, एस० सी० :	दी ओरांवस

अबूझमाड़ के माड़िया युवक-युवती, जिला बस्तर

चित्रफलक तीन

(क) दण्डामी माड़िया युवक, जिला बस्तर
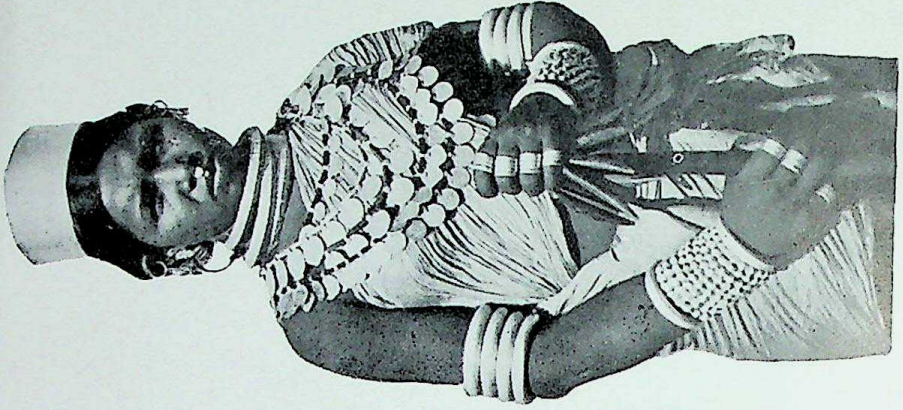
(ख) दण्डामी माड़िया युवती, जिला बस्तर

भविष्यकथन

चित्रफलक पाँच

सिरहा
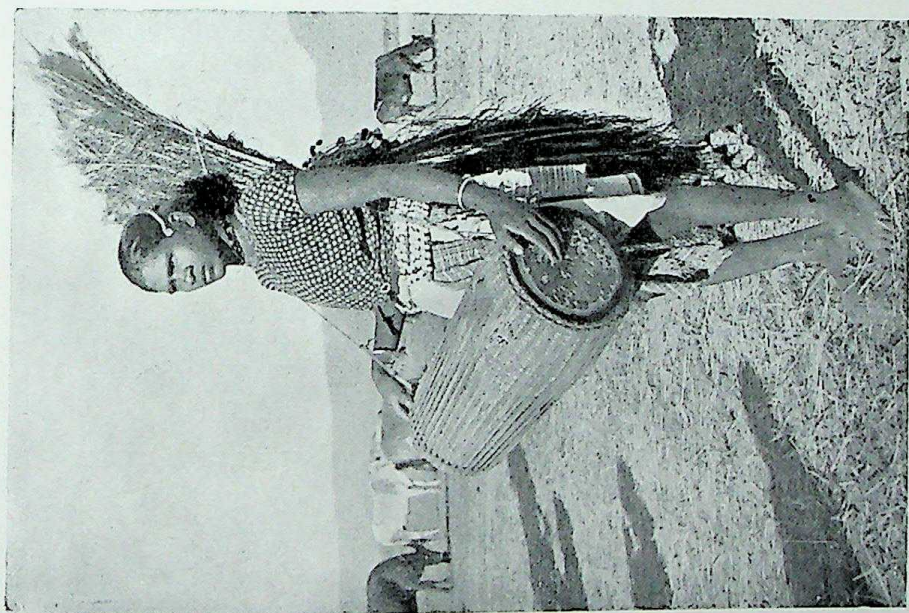
(क) उरांव युवक, सीतापुर, जिला सरगुजा

(ख) उरांव युवती, सीतापुर, जिला सरगुजा

चित्रफलक सात

(क) कोरकू पुरुष, जिला अमरावती

(ख) कोरकू स्त्री, जिला अमरावती
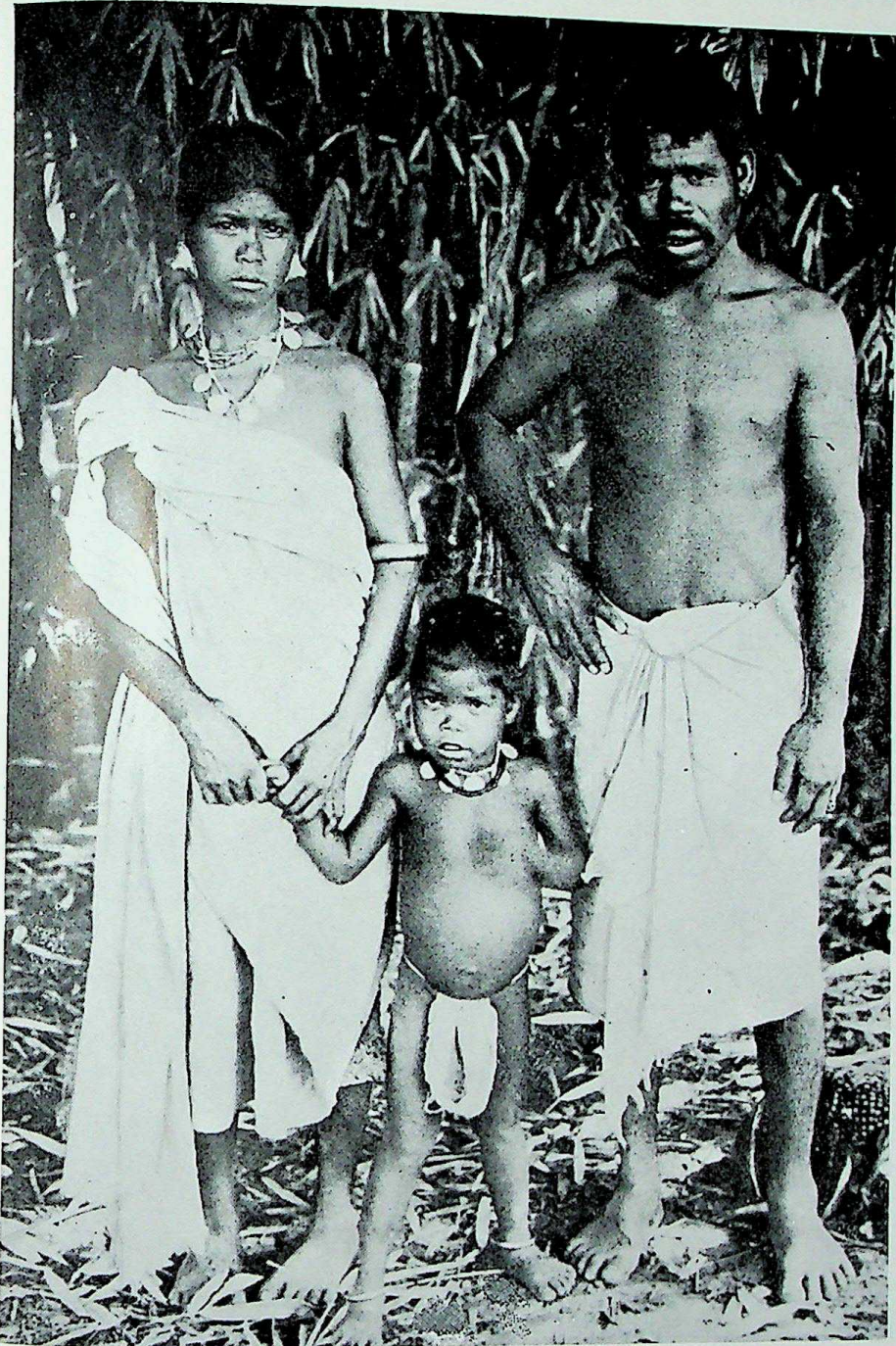
कोरबा परिवार

चित्रफलक नौ

पितरों की पूजा करते हुये गोंड़, जिला छिंदवाड़ा

बैगा, बैहर, जिला बालाघाट

चित्रफलक ग्यारह

बंजारा दम्पति, जिला यवतमाल

(क) रायपुर संग्रहालय में प्रदर्शित बंजारा जनजाति के वस्त्राभरण

(ख) रायपुर संग्रहालय में प्रदर्शित कोरकु जनजाति के वस्त्राभरण
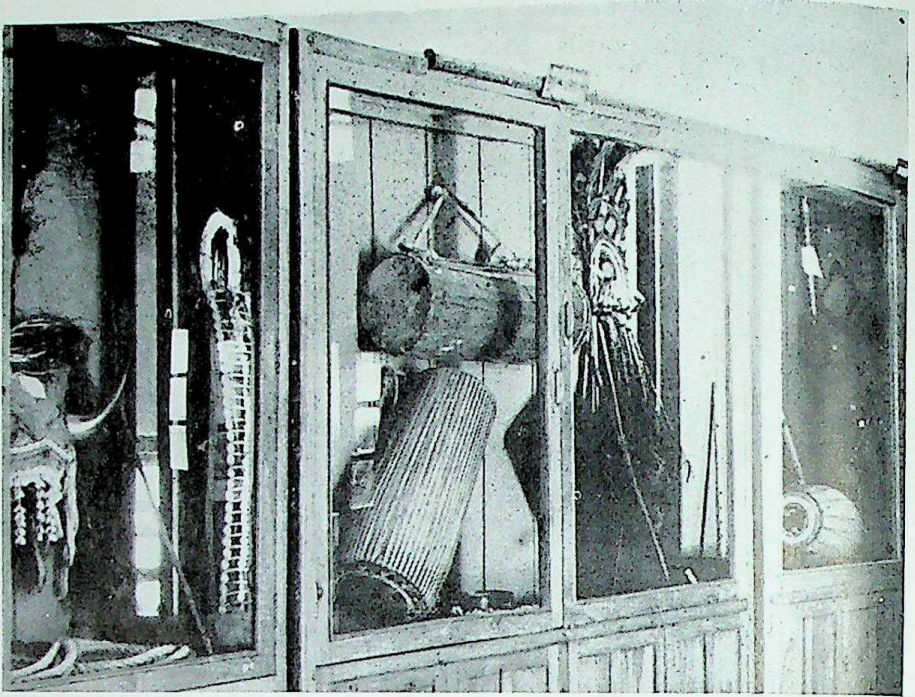
(क) रायपुर संग्रहालय में प्रदर्शित जनजातियों के वाद्य
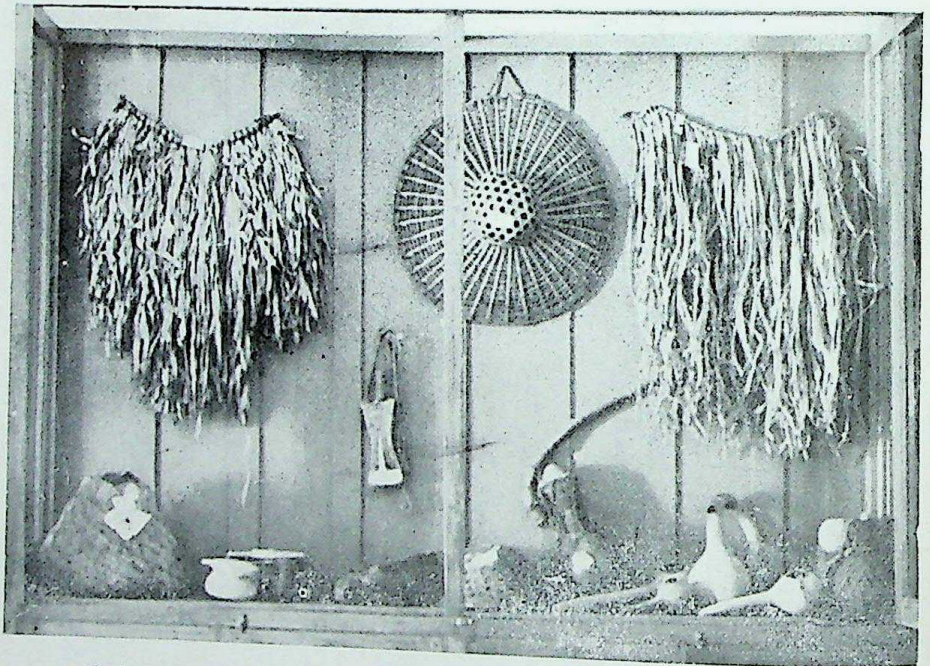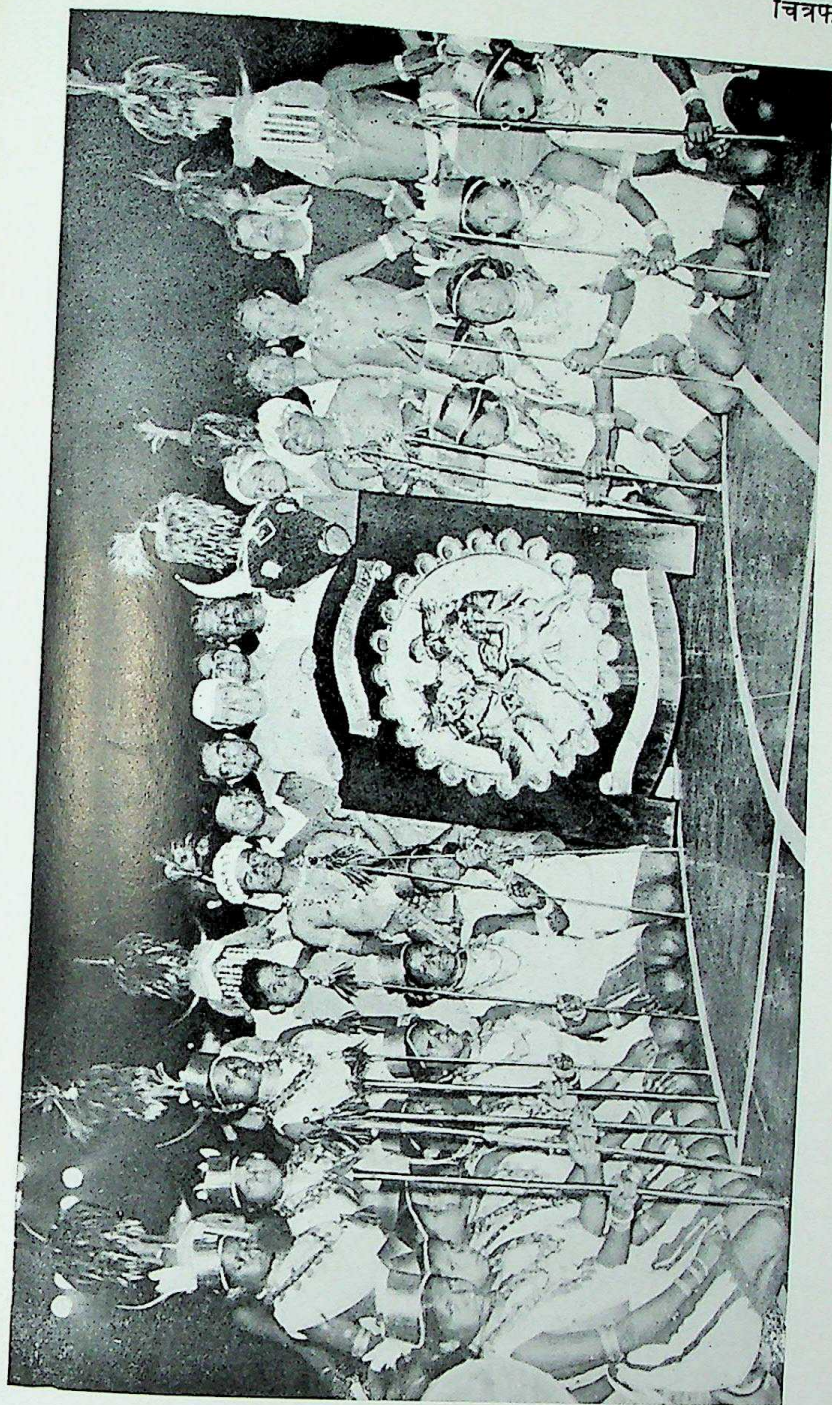
(ख) रायपुर संग्रहालय में प्रदर्शित जनजातियों के दैनिक उपयोग की वस्तुएं

लोकनृत्य पुरस्कार विजेता मध्यप्रदेश के जनजातीय कलाकार, २६ जनवरी १९६०

चित्रफलक तेरह
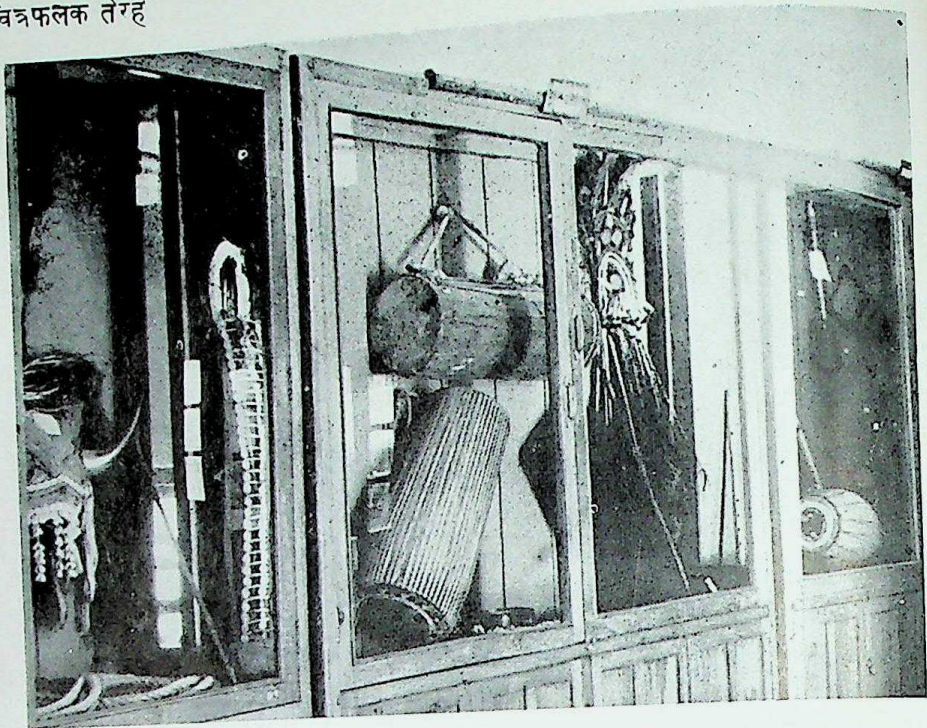
(क) रायपुर संग्रहालय में प्रदर्शित जनजातियों के वाद्य
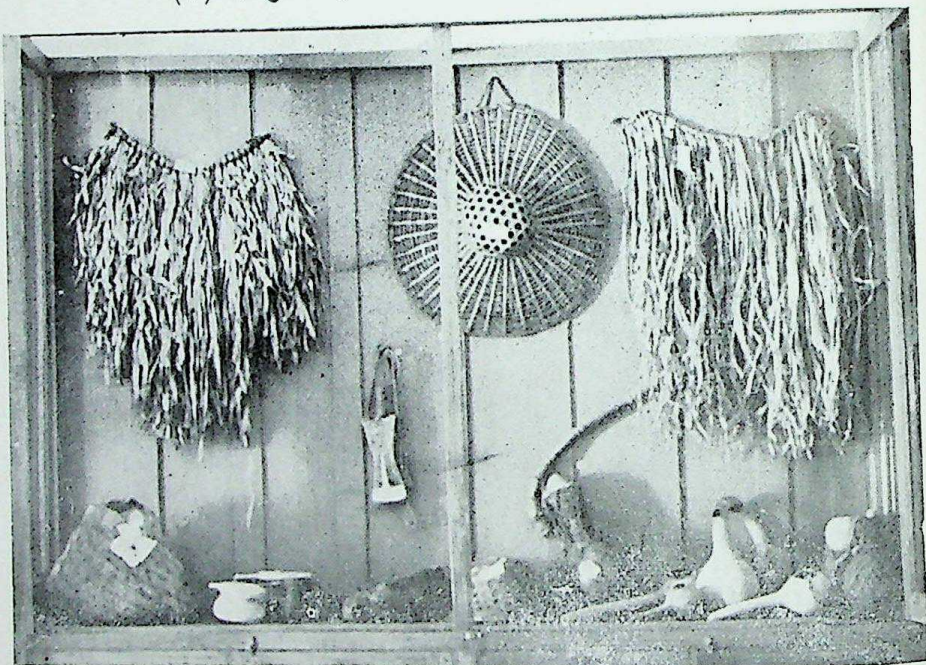
(ख) रायपुर संग्रहालय में प्रदर्शित जनजातियों के दैनिक उपयोग की वस्तुएं
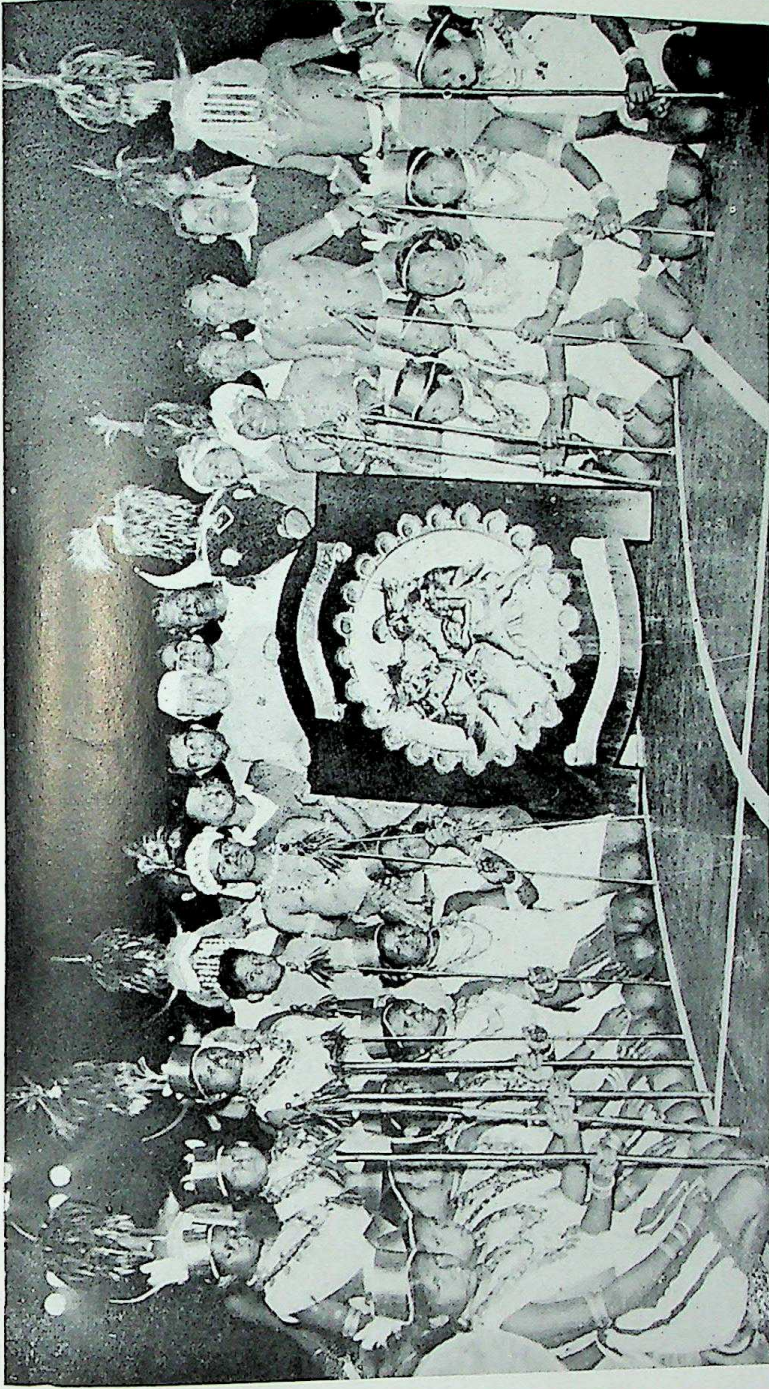
लोकनृत्य पुरस्कार विजेता मध्यप्रदेश के जनजातीय कलाकार, २६ जनवरी १९६०
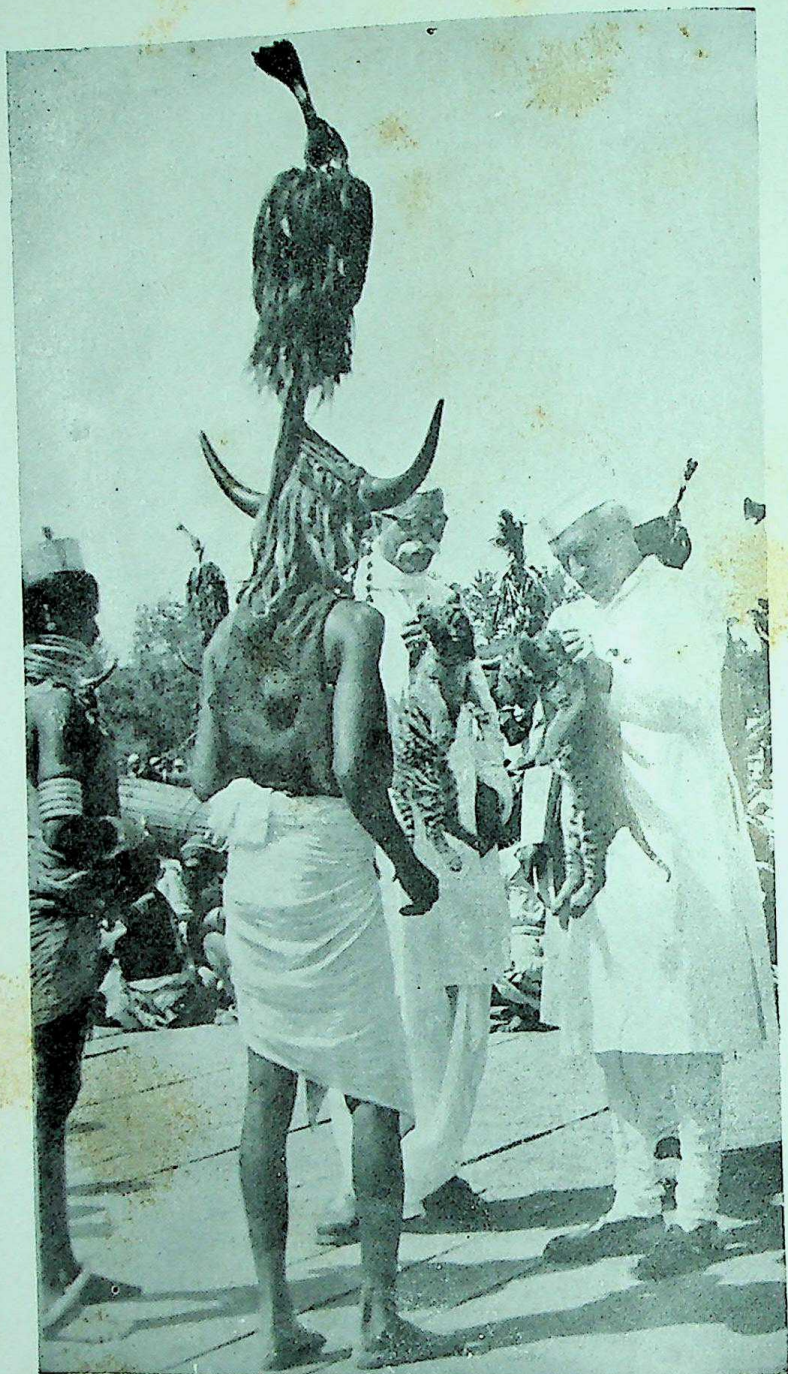
प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू को
बाघ के बच्चों की भेंट करते हुये बस्तर के जनजातीय लोग

महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय, रायपुर

के

प्रकाशन

—:०:—

१. महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय रायपुर में सुरक्षित उत्कीर्ण लेखों की विवरणात्मिका सूची

२. लिस्ट आफ क्वाइन्स डिपाजिटेड इन दि एम० जी० एम० म्यूजियम रायपुर (अंग्रेजी)

३. महंत घासीदास स्मारक संग्रहालय (उद्‌भव, इतिहास और प्रवृत्तियां)

४. मानवशास्त्रीय उपविभाग प्रदर्शिका

५. प्रकृति इतिहास उपविभाग प्रदर्शिका

६. पुरातत्त्व उपविभाग प्रदर्शिका

७. पुरातत्व उपविभाग का सूचीपत्र भाग ३, धातुप्रतिमाएं

८. पुरातत्त्व उपविभाग का सूचीपत्र भाग २, पाषाण प्रतिमाएं

९. पिक्चर पोस्ट कार्ड (विभिन्न सेट)